

**शि**क्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा मिलने और पिछले वर्षों में शिक्षा पर चली सघन बहसों के बावजूद सामाजिक मनस में कम ही बदलाव नजर आता है। किसी भी समाज में शिक्षा गणितीय संक्रियाओं की तरह निर्दोष चलने वाली प्रक्रिया नहीं है। शिक्षा कठोर सामाजिक-आर्थिक स्थितियों से रूपाकार ग्रहण करती है। किसी समाज के स्थापित ताने-बाने शिक्षा को प्रभावित करते हैं। शिक्षा का अधिकार कानून आने के बाद शिक्षा किन्हीं बच्चों या किसी वर्ग विशेष पर रहम नहीं, उनका अधिकार है। अब गरीब बच्चों की शिक्षा उच्च या मध्यम वर्गीय दयानतदारी का मसला नहीं है। इस अंक में शामिल 'एक खुला खत' गरीब बच्चों की शिक्षा को लेकर आनन-फानन में की जाने वाली कारगुजारियों का विरोध करते हुए, शिक्षा को एक सुविचारित और जवाबदेह गतिविधि के रूप में समझे जाने पर बल देता है। इस खत में कहा गया है कि सभी बच्चों को समान गुणवत्ता की शिक्षा मिलना अब उनका संवैधानिक अधिकार है।

कमल किशोर के पुस्तकालय संचालन के अनुभव वयस्कों और शिक्षकों की इस धारणा को चुनौति देते हुए कि बच्चे नहीं पढ़ते, पुनः इसी मान्यता को पुष्ट करते हैं कि बच्चे पढ़ना चाहते हैं और उनके लिए हमारे समाज में जीवंत पुस्तकालयों की जरूरत है। वे अपने अनुभव से बताते हैं कि पुस्तकालय महज किताबों का लेन-देन भर नहीं है बल्कि बच्चों की सृजनशीलता और विचारशीलता को क्रियाशील करने का एक जरिया है। वे अपने अनुभव से आश्वस्त करते हैं कि पुस्तकालय समुदायों के बीच एक ऐसा स्थान हो सकता है जो तमाम शैक्षिक और सामाजिक समस्याओं को संबोधित कर सकता है। लेकिन वे इसके लिए संवाद और खुला माहौल कायम करने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

रोहित धनकर का लेख भारत में अभी तक बने कुल तीन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेजों का ज्ञानमीमांसीय नजरिए से तुलनात्मक विश्लेषण करता है। वे इन तीनों दस्तावेजों में इंसान, समाज, सीखने और ज्ञान के बारे ली गई मान्यताओं को चिह्नित करते हुए बताते हैं कि पाठ्यचर्या दस्तावेजों में तमाम समान शब्दावली के बावजूद उनके निहितार्थों में फर्क है। लेख बताता है कि पाठ्यचर्या दस्तावेजों की करीब 25 वर्षों की यात्रा में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। वे कहते हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 उपरोक्त मान्यताओं में ज्यादा स्पष्ट है। हालांकि वे रेखांकित करते हैं कि 2005 के पाठ्यचर्या दस्तावेज में भी सीखने के सिद्धान्त और ज्ञानमीमांसीय नजरिए में एक तनाव दिखाई देता है।

यह माना जाता है कि पाठ्यचर्या अपेक्षित ज्ञान, मूल्यों, दक्षताओं और अभिवृत्तियों को अर्जित करने के लिए लक्षित होती है और इसे कोई भी समाज अपने लिए तय करता है। इससे यह सवाल उत्पन्न होता है कि शिक्षार्थी इन्हें अर्जित कर रहे हैं अथवा नहीं, इसे कैसे जांचा जाए? हृदयकांत दीवान इस समस्या को अपने लेख की विषयवस्तु बनाते हुए आकलन पर चल रही बहसों के विरोधाभास को सामने रखते हैं। वे कहते हैं कि आकलन का प्रचलित नजरिया शिक्षा के लक्ष्यों से जुदा है। वे प्रगतिशील शब्दावली में की जा रही चर्चा और समान्तर रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे आकलनों के बीच तमाम देशों के मध्य की जा रही तुलना को असंगत मानते हैं।

इन लेखों के साथ फ़राह फ़ारूकी की 'एक स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने' की अगली कड़ी प्रस्तुत है। स्कूल के यह अनुभव स्कूल संचालन की पेचीदगियों और उनमें साझे लक्ष्यों को पाने की कशमाकश को बारीकी से बयान करती हैं। वे लिखती हैं कि सत्ता नियंत्रण का जरिया हो सकती है लेकिन क्या यह कोशिश सार्थक बदलाव ला सकती है? उनके शब्दों में, "इस तरह "डर" को हालात में काबू करने का हथियार बनाया गया। लेकिन यह दर्द को दबाने का एक तरीका था, मर्ज तो ज्यों का त्यों रहा"। पुस्तक समीक्षा में एकलव्य, भोपाल से आई जूलिया वेबर गार्डन की पुस्तक 'मेरे ग्रामीण स्कूल की डायरी' की समीक्षा है। इसी सामग्री के साथ यह अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। ♦

दिरंगर